प्रकाशन हेतु अनुमोदित

<u>छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुर</u>

<u>रिट याचिका (एस) क्रमांक : 2674/ 2005</u>

<u>याचिकाकर्ता</u> बैजनाथ बंदे

विरुद्ध

उत्तरवादीगण मध्यप्रदेश राज्य (वर्तमान छत्तीसगढ़ राज्य) एवं अन्य।

<u>आदेश हेतु दिनांक 28.04.2008 को नियत करें।</u>

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

सही/-

सतीश के. अग्नीहोत्री

न्यायाधीश

छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुर

एकल पीठ : माननीय श्री सतीश के. अग्नीहोत्री, न्यायाधीश

रिट याचिका (एस) क्रं. 2674/2005

याचिकाकर्ता — बैजनाथ बंदे, पिता – आनंद दास बंदे, निवासी ग्राम सेंदरी, तहसील व जिला बिलासपुर (म.प्र.)

विरुद्ध

उत्तरवादीगण — 1. मध्य प्रदेश राज्य (वर्तमान छत्तीसगढ़ राज्य), द्वारा प्रमुख सचिव, राजस्व विभाग, वल्लभ भवन, भोपाल।
2. आयुक्त, बिलासपुर संभाग, बिलासपुर, तहसील एवं जिला बिलासपुर।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 की धारा 19 के अंतर्गत आवेदन

याचिकार्ता के लिए: — श्री के.आर. नायर, अधिवक्ता।

उत्तरवादीगण के लिए: — श्री सतीश गुप्ता, उप शासकीय अधिवक्ता।

आदेश

(दिनांक 28 अप्रैल 2008 को पारित)

1. याचिकाकर्ता द्वारा यह याचिका मध्यप्रदेश राज्य प्रशासनिक अधिकरण, रायपुर के समक्ष प्रस्तुत की गई थी, जिसे मूल आवेदन क्रमांक 945/1998 के रूप में पंजीबद्ध किया गया था। अधिकरण के विघटन के उपरांत, यह याचिका उच्च न्यायालय को प्रेषित की गई है और अब इसे रिट याचिका (एस.) क्रमांक 2674/2005 के रूप में पंजीबद्ध किया गया है।

2. याचिकाकर्ता ने राज्य शासन द्वारा दिनांक 25.10.1997 को पारित आदेश (अनुलग्नक ए/1) को चुनौती दी है, जिसके द्वारा आयुक्त के दिनांक 24.10.1995 के आदेश के विरुद्ध प्रस्तुत अपील को खारिज कर दिया गया था।

3. संक्षेप में प्रासंगिक तथ्य इस प्रकार हैं कि याचिकाकर्ता को दिनांक 30.5.1973 के आदेश (अनुलग्नक ए/15) के द्वारा, जो कि आयुक्त, बिलासपुर संभाग, बिलासपुर द्वारा पारित किया गया था, द्वितीय श्रेणी लिपिक के पद पर नियुक्त किया गया। उसे दिनांक 17.12.1976 के आदेश (अनुलग्नक ए/3) द्वारा अर्द्ध-स्थायी द्वितीय श्रेणी लिपिक घोषित किया गया। संबन्धित समयावधि में याचिकाकर्ता, तहसीलदार, लोरमी, जिला–बिलासपुर के न्यायालय में रीडर (द्वितीय श्रेणी लिपिक) के पद पर कार्यरत था।

4. एक विभागीय जांच, जिला कलेक्टर द्वारा आरंभ की गई। जिला कलेक्टर, बिलासपुर द्वारा दिनांक 6.2.1989 को पारित आदेश द्वारा, याचिकाकर्ता को सेवा से पदच्युत कर दिया गया। उक्त आदेश की आयुक्त, बिलासपुर संभाग द्वारा दिनांक 1.9.1989 को पुष्टि की गई। राज्य शासन के समक्ष याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत अपील में, आयुक्त के आदेश को इस आधार पर चुनौती दी गई कि आयुक्त ने प्रकरण के तथ्यों पर विचार नहीं किया, जबकि याचिकाकर्ता का नियोक्ता प्राधिकारी आयुक्त था न कि जिला कलेक्टर। राज्य शासन ने यह अभिमत व्यक्त किया कि जिला कलेक्टर द्वारा पदच्युत किए जाने के उपरांत आयुक्त द्वारा की गई पुष्टि अवैध है। अतः, राज्य शासन द्वारा दिनांक 26.5.1990 के आदेश (अनुलग्नक ए/6) के माध्यम से दिनांक 6.2.1989 का आदेश, जो कि जिला कलेक्टर द्वारा पारित किया गया था, तथा दिनांक 1.9.1989 का आदेश, जो कि आयुक्त द्वारा पारित किया गया था, समस्त परिणामिक लाभों के साथ, खारिज कर दिया गया । राज्य शासन द्वारा यह भी निर्देशित किया गया कि सेवा से पृथक रहने की अवधि में याचिकाकर्ता द्वारा अर्जित की गई किसी भी राशि को समायोजित करते हुए पूर्ण वेतन सहित पुनःस्थापना किया जाए।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

5. तत्पश्चात, आयुक्त द्वारा दिनांक 28.6.1990 को एक नवीन आरोप पत्र (अनुलग्नक ए/7) जारी किया गया, जो इस प्रकार हैः—

> "श्री बैजनाथ बंदे, द्वितीय श्रेणी लिपिक के विरुद्ध प्रस्तावित विभागीय जांच में आरोप-पत्र
>
> आरोप क्रमांक 1: 'आप जब तत्कालीन तहसीलदार श्री आर.सी. मेरिया के न्यायालय में वाचक के पद पर पदस्थ थे, व्यवस्थापन पट्टों में श्री मेरिया तहसीलदार के कूटरचित हस्ताक्षर बनाकर तथा मनमाने ढंग से प्रकरण क्रमांक व तिथि डालकर पट्टों का वितरण कर अपने पद का दुरुपयोग किया। इस प्रकार आपने जालसाजी एवं धोखा-धड़ी की है।
>
> आपका यह कृत्य गंभीर दुराचार घोतक है।

आरोप क्रमांक 2: आप जब तत्कालीन तहसीलदार श्री मेरिया के वाचक पद पर कार्यरत थे, राजस्व पुस्तक परिपत्र के खण्ड 2-1द्ध के नियम 14, 15, 23, 28 के अनुसरण में राजस्व मामलों की पंजी वर्ष 84-85 के कॉलम ने. 3, 5, 10, 16 का सही ढंग से संधारण नहीं किए हैं। कूटरचित पट्टे जारी करने की दुर्भावना से प्रकरण प्रारंभ करने तथा आदेश दिनांक भी प्रकरणों में काट कूट एवं हेरा फेरी की है। राजस्व पुस्तिका परिपत्र के खण्ड 2-1द्ध के अंतर्गत न्यायालय के प्रस्तुत कारों को दी गई हिदायतों के पालन प्रति पूर्ण उपेक्षा की है। आपका यह कृत्य शासकीय कार्य में घोर लापरवाही कर्तव्यों की उपेक्षा का परिचायक है।

आरोप क्रमांक 3: आप दिनांक 13/2/88 से 17/2/88 तक बिना अवकाश स्वीकृति के अथवा बिना अनुमति के मुख्यालय लोरमी से अनुपस्थिति रहे।

आपका यह कृत्य अनुषासनहीनता का परिचायक है।

आरोप क्रमांक 4: वा.शा.नि. से प्राप्त की गई तकाबी ऋण की माफी सूची आपने तहसीलदार द्वारा आदेषित करने के पश्चात भी वापस नहीं किए।

इस प्रकार आपने वरिष्ठ अधिकारी के आदेश की अवहेलना की है।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

आरोप क्रमांक 5: आप दिनांक 15.4.86 से प्रतिलिपि शाखा के प्रभार में थे दिनांक 16.10.87 से 11.11.87 तक कोई रसीद बुक संधारित नहीं की गई है। जो रसीद बुक संधारित की गई है उसमें पृष्ठ सत्यापित नहीं कराये गये हैं। पुस्तक निर्धारित प्रपत्र 2-68/ सी.जे. में संधारित नहीं किये गये हैं।

इस प्रकार आपने म.प्र.भू.रा.संहिता की धारा 256 के अंतर्गत बने नियम 19.32.37.38 का पालन नहीं किया है।"

6. याचिकाकर्ता द्वारा समयावधि में अपना जवाब प्रस्तुत नहीं किया जा सका। आयुक्त द्वारा डिप्टी कलेक्टर, बिलासपुर को जांच अधिकारी तथा अनुविभागीय अधिकारी, लोरमी को प्रस्तुतकर्ता अधिकारी के रूप में नियुक्त किया गया। जांच अधिकारी द्वारा अपनी जांच रिपोर्ट दिनांक 5.12.1994 (अनुलग्नक ए/10) को प्रस्तुत की गई, जिसमें आरोप क्रमांक 1 से 4 को प्रमाणित तथा आरोप क्रमांक 5 को आंशिक रूप से प्रमाणित पाया गया।

7. नोटिस के पश्चात, याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 12.6.1995 (अनुलग्नक ए/9) को जांच प्रतिवेदन का जवाब पेश किया गया, जिसमें यह व्यक्त किया गया कि गवाहों की सूची में अंकित व्यक्तियों — श्री जे. पी. श्रीवास्तव, श्री डी. एम. दास, श्री नर्हर प्रसाद, श्री विजय कुमार सिंह, श्री विष्णु प्रसाद, श्री दौलत राम, श्री रामदेव प्रसाद, श्री गंगा राम यादव, श्री रामाश्रय यादव एवं श्री आर. सी. मौर्य — को उनके कथन लेखबद्ध करने हेतु तलब नहीं किया गया था, तथा केवल तीन व्यक्तियों — श्री चैतराम, श्री गंगा राम एवं श्री रामाश्रय — को ही तलब किया गया। याचिकाकर्ता को इन गवाहों का प्रतिपरीक्षण करने का अवसर भी नहीं दिया गया, यह कहकर कि याचिकाकर्ता ने पहले ही दिन यह कथन दे दिया था कि वह जो कुछ कहना चाहता था, कह चुका है।

8. याचिकाकर्ता द्वारा यह तर्क भी किया गया है कि श्री जे. पी. श्रीवास्तव, तत्कालीन तहसीलदार, लोरमी तथा श्री आर. सी. मौर्य, तहसीलदार पट्टा वितरण महत्वपूर्ण गवाह थे। उनका जांच में परीक्षण एवं प्रतिपरीक्षण किया जाना चाहिए था। तहसीलदार, लोरमी द्वारा ऐसे पट्टे प्रदान किए गए, जिनके संबंध में याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोप विरचित किए गए हैं, किन्तु उक्त अधिकारियों का परीक्षण किए बिना ही याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोप को प्रमाणित मान लिया गया। याचिकाकर्ता ने अपने जवाब में यह भी उल्लेख किया है कि गवाहों के परीक्षण प्रतिपरीक्षण के पश्चात ही याचिकाकर्ता का परीक्षण किया जाना था। याचिकाकर्ता ने आगे यह तर्क किया है कि उसने आरोप-पत्र के जवाब में दिनांक 19.11.1991 को, जांच लंबित रहते हुए, अपना जवाब प्रस्तुत कर दिया था। जांच, पूर्ववर्ती जांच के आधार पर की गई थी, जो कि अवैध थी। जांच प्रतिवेदन समुचित जांच किए बिना पेश किया गया था। प्रस्तुतकर्ता अधिकारी कार्यवाही के दौरान किसी भी समय उपस्थित नहीं रहे। आयुक्त द्वारा, दिनांक 12.6.1995 को प्रस्तुत याचिकाकर्ता के जवाब पर विचार किए बिना, दिनांक 24.10.1995 को आदेश (अनुलग्नक ए/2) पारित किया गया, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता को यह कहते हुए कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध कदाचार का आरोप प्रमाणित हो गया है, सेवा से पदच्युत कर दिया गया ।

9. उक्त आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता द्वारा राज्य शासन के समक्ष अपील (अनुलग्नक ए/11) प्रस्तुत की गई, जिसमें जांच प्रतिवेदन की प्राप्ति पर दिए गए जवाब में उठाए गए तथ्यों को ही दोहराया गया। अतिरिक्त आधारों को याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 26.8.1996 के पत्र (अनुलग्नक ए/12) के माध्यम से राज्य शासन के सचिव को प्रस्तुत किया गया, जिसमें यह व्यक्त किया गया कि जांच अधिकारी के समस्त विनिश्चय पूर्ववर्ती जांच प्रतिवेदन पर आधारित

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

है, जो कि अवैध घोषित किये जा चुके हैं, तथा कोई भी गवाह न तो तलब किए गए और न ही परीक्षित किए गए।

10. राज्य शासन द्वारा दिनांक 25.10.1997 को, अपील (अनुलग्नक ए/1) यह व्यक्त करते हुए निरस्त कर दिया गया कि समस्त आरोप प्रमाणित पाए गए हैं। अतः याचिकाकर्ता द्वारा यह याचिका प्रस्तुत की गई है।

11. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री के. आर. नायर ने यह तर्क किया है कि याचिकाकर्ता को द्वितीय आरोप पत्र उन्हीं आरोपों के आधार पर जारी किया गया था, जिसके परिणामस्वरूप पहले पदच्युत किया गया था, किन्तु तत्पश्चात राज्य शासन द्वारा अपील में जिला कलेक्टर एवं आयुक्त के आदेश को निरस्त करते हुए, दिनांक 26.05.1990 (अनुलग्नक ए/6) के आदेश के माध्यम से याचिकाकर्ता को समस्त परिणामिक लाभों सहित पुनः सेवा में बहाल किया गया था, अतः पुनः उन्हीं आरोपों के आधार पर की गई कार्यवाही सही नहीं है तथा अवैध है। द्वितीयतया, याचिकाकर्ता पर लगाए गए आरोप वास्तविक रूप से आधारहीन हैं, क्योंकि कथित अनियमितताएं तत्कालीन तहसीलदार, लोरमी द्वारा की गई थीं। याचिकाकर्ता मात्र रीडर था तथा उसने किसी को भी कोई कूटरचित अथवा फर्जी पट्टा जारी नहीं किया था। यद्यपि याचिकाकर्ता बिना पूर्व अनुमति के अवकाश पर था, किंतु यह केवल अनुशासनहीनता मानी जा सकती है, न कि कदाचार। तहसीलदार के निर्देश के बावजूद ऋण माफी सूची न देना भी कदाचार नहीं कहा जा सकता, अधिकतम यह अवज्ञा मानी जा सकती है। जब याचिकाकर्ता प्रतिलिपि अनुभाग में कार्यरत था, तब रसीद बुक संधारित करने की बाध्यता उस पर नहीं थी। यदि कोई उल्लंघन है भी, तो वह अधिकतम छत्तीसगढ़ भू-राजस्व संहिता की धारा 256 का तकनीकी उल्लंघन है। विभागीय जांच दूषित है, क्योंकि जांच अधिकारी ने पूर्ववर्ती जांच के दौरान लिये गये कथनों के आधार पर कार्यवाही की है। याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 19.11.1991 को लिखे गए पत्र के बावजूद किसी भी गवाह को न तो तलब किया गया, न ही परीक्षित किया गया।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

12. विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क किया है कि जांच प्रतिवेदन के अवलोकन से स्पष्ट है कि जांच अधिकारी द्वारा किसी भी गवाह को तलब नहीं किया गया तथा उनके कथन दर्ज नहीं किए गए। जांच के प्रारंभ में ही याचिकाकर्ता का यह कथन दर्ज कर लिया गया जिसमें उसने कथन किया कि वह कुछ नहीं कहना चाहता है। कोई भी गवाह तलब नहीं किया गया न ही किसी के कथन लेखबद्ध किये गये जो कि निष्कर्ष से विदित है। इस प्रकार कि संपूर्ण जांच दोषपूर्ण है। आयुक्त

द्वारा याचिकाकर्ता के द्वितीय कारण बताओ सूचना पत्र के जवाब पर विचार नहीं किया गया तथा राज्य शासन द्वारा भी अपील में प्रस्तुत किए गए आधारों पर विचार नहीं करते हुए अपील को अस्वीकृत कर दिया गया। अतः यह जांच प्रक्रिया दूषित है तथा निरस्त किए जाने योग्य है।

13. प्रतिवादीगण की ओर से विद्वान उप शासकीय अधिवक्ता श्री सतीश गुप्ता द्वारा व्यक्त किया गया है कि उनके द्वारा प्रस्तुत याचिका का जवाब ही उनका तर्क है।

14. यह तर्क किया गया है कि याचिकाकर्ता के हस्ताक्षर की किसी विशेषज्ञ से पुष्टि नहीं करवाई गई। जिन तिथियों में कूटरचित पट्टे जारी किए गए, उस समय तहसीलदार मौर्य वहां पदस्थ नहीं थे। याचिकाकर्ता द्वारा गवाहों की सूची नहीं मांगी गई थी, अतः उन्हें तलब नहीं किया गया। आयुक्त द्वारा पारित आदेश तथा तत्पश्चात राज्य शासन द्वारा अपील का खारिज किया जाना वैध एवं उचित है।

15. मैंने दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना। जांच प्रतिवेदन के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि जांच अधिकारी द्वारा याचिकाकर्ता के साधारण कथन कि वह कुछ नहीं कहना चाहता है, के आधार पर गवाहों का परीक्षण किए बिना ही केवल याचिकाकर्ता के प्रारंभिक कथन के आधार पर जांच पूर्ण कर दी गई, जो कि विभागीय जांच के स्थापित विधिक प्रक्रिया के प्रतिकूल है। आरोप पत्र के साथ संलग्न गवाहों की सूची के अनुसार, गवाहों के परीक्षण के पश्चात ही याचिकाकर्ता का परीक्षण किया जाना चाहिए था। जांच अधिकारी द्वारा इस तथ्य की उपेक्षा की गई कि राज्य शासन द्वारा दिनांक 26.05.1990 (अनुलग्नक ए/6) के आदेश के माध्यम से पूर्व आदेश दिनांक 6.2.1989 (कलेक्टर द्वारा पारित) तथा दिनांक 1.9.1989 (आयुक्त द्वारा पारित) को निरस्त कर, याचिकाकर्ता को सेवा में समस्त परिणामिक लाभों सहित बहाल कर दिया गया था।

16. राज्य शासन द्वारा दिनांक 26.05.1990 (अनुलग्नक ए/6) के आदेश के माध्यम से आयुक्त को निर्देशित किया गया था कि वह यथोचित विधिक प्रक्रिया के अनुरूप नवीन विभागीय जांच संपादित करें। "विधिक प्रक्रिया के अनुसार" का तात्पर्य यह है कि आयुक्त को मध्यप्रदेश सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण एवं अपील) नियम, 1966 की धारा 14 का पालन करना था, किन्तु आरोप पत्र के साथ संलग्न गवाहों की सूची में उल्लिखित समस्त गवाहों में से केवल तीन गवाहों का परीक्षण किया गया, एवं उनके कथन दर्ज किए गए। प्रमुख गवाह श्री आर. सी. मौर्य का भी परीक्षण नहीं किया गया।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

17. ऐसा प्रतीत होता है कि जांच अधिकारी द्वारा पूर्व की जांच जिसे अवैध घोषित किया जा चुका था, को ही जारी रखते हुए पुनः जांच की गई, जबकि यह एक पृथक नवीन जांच थी। *नियमों, 1966* के नियम 14(22) के अनुसार, यदि कोई जांच प्राधिकारी की, किसी जांच में संपूर्ण या आंशिक साक्ष्य को सुनकर एवं अभिलेखित कर लेने के पश्चात उस जांच में उसकी अधिकारिता समाप्त हो जाती है, और उसका स्थान कोई अन्य जांच प्राधिकारी लेता है, तो ऐसा उत्तराधिकारी, पूर्व जांच प्राधिकारी द्वारा अभिलेखित साक्ष्य पर कार्यवाही कर सकता है या स्वयं आंशिक साक्ष्य अभिलेखित कर सकता है। किन्तु वर्तमान प्रकरण में यह पूर्ववर्ती जांच की निरंतरता का मामला नहीं है, अपितु यह एक पुनः नवीन रूप से आरंभ की गई स्वतंत्र जांच है।

18. पूर्वाग्रह के संदर्भ में, याचिकाकर्ता का संपूर्ण आरोप यह है कि पट्टों पर हस्ताक्षर स्वयं तहसीलदार द्वारा किए गए थे तथा संबंधित तहसीलदार एवं अन्य अधिकारियों की जांच नहीं की गई। याचिकाकर्ता को गवाहों की सुनवाई एवं उनके प्रतिपरीक्षण का अवसर नहीं दिए जाने के कारण उसे गंभीर रूप से प्रतिकूल प्रभाव हुआ है, जबकि उक्त गवाहों के नाम गवाहों की सूची में सम्मिलित थे। जांच अधिकारी द्वारा गवाहों के कथन दर्ज करने हेतु सूचीबद्ध गवाहों को तलब नहीं किया गया। याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 12.06.1995 को जांच प्रतिवेदन पर दिए गए कारण बताओ नोटिस के जवाब में यह व्यक्त किया गया था कि प्रासंगिक गवाहों का परीक्षण नहीं किया गया है तथा याचिकाकर्ता को उनके प्रतिपरीक्षण का अवसर प्रदान नहीं किया गया, जिससे वह प्रतिकूल रूप से प्रभावित हुआ है। यह भी व्यक्त किया गया था कि जब कार्यवाही अभिलिखित की जा रही थी उस समय जांच अधिकारी उपस्थित नहीं था। उक्त तथ्यों पर न तो आयुक्त ने विचार किया और न ही बाद में अपीलीय प्राधिकारी अर्थात राज्य शासन ने, जब उन्होंने पदच्युत करने वाला आक्षेपित आदेश पारित किया।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

19. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा (1996) 3 एस.सी.सी. 364 में प्रकाशित ***न्यायदृष्टांत स्टेट बैंक आफ पटियाला व अन्य विरूद्ध एस.के. शर्मा***[1] में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के सभी निर्णयों के अवलोकन पश्चात् यह प्रतिपादित किया गया कि -

> "28. उपरोक्त उद्धृत निर्णयों से एक बात स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है, यह कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को किसी कठोर एवं स्थिर सूत्र में नहीं बांधा जा सकता। जैसा कि ***रसेल विरूद्ध ड्यूक आफ नौरफोक*** (1949) में कहा गया था, इन सिद्धांतों को अनम्यसूत्र के रूप में लागू नहीं किया जा सकता। इनकी प्रासंगिकता प्रत्येक प्रकरण के प्रसंग, तथ्य एवं परिस्थितियों पर निर्भर करती है। (*देखें मोहिन्द्र सिंह गिल विरूद्ध मुख्य*

[1] (1996) 3 एसीसी 364

निर्वाचन कमिश्नर)। इनका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि जिसके अधिकार प्रभावित हो रहे हों, उसे निष्पक्ष सुनवाई एवं न्यायोचित प्रक्रिया प्राप्त हो। (*देखें ए. के. रॉय एवं स्वदेशी कॉटन मिल्स विरूद्ध भारत संघ*)। इस न्यायालय द्वारा जैसा कि *ए.के. क्राइपाक विरूद्ध बनाम भारत संघ* में प्रतिपादित किया गया था कि अर्द्ध-न्यायिक कृत्य एवं प्रशासनिक कृत्य के मध्य रेखा अब अत्यंत सूक्ष्म एवं लगभग विलीन हो चुकी है, जैसा कि सिविल सेवा संघ के काउन्सिल विरूद्ध सिविल सेवा के मिनिस्टर में *हाउस आफ लॉर्डस* द्वारा भी एक ऐसा तथ्य पर बल दिया गया था जहाँ प्राकृतिक न्याय एवं निष्पक्ष सुनवाई को समानार्थी माना गया था। प्रत्येक स्थिति में, परीक्षण का मापदंड यह होता है अर्थात् पूर्वाग्रह की कसौटी पर कि क्या व्यक्ति को निष्पक्ष सुनवाई प्राप्त हुई । इस कसौटी पर दोनों पक्षों को सुने जाने के सिद्धांत के उल्लंघन की शिकायत का परीक्षण किया जाना चाहिए। वस्तुतः, ऐसे प्रसंग हो सकते हैं जहाँ पूर्व सूचना या सुनवाई की अपेक्षा पूरी करना, स्वयं उस कार्यवाही को विफल बना दे, जिससे जनहित को गंभीर क्षति हो सकती है। इसीलिए निर्णय पश्चात सुनवाई को कुछ मामलों में प्राकृतिक न्याय के पालन की पर्याप्त पूर्ति के रूप में स्वीकार किया गया है (*उदाहरण: लिबर्टी ऑइल मिल्स विरूद्ध भारत संघ*)। कुछ मामलों में जहाँ राज्य हित या सुरक्षा की दृष्टि से दोनों पक्षों को सुने जाने के सिद्धांत का पालन करना अव्यवहारिक हो, वहाँ उसे पूरी तरह छोड़ा जा सकता है [जैसा कि अनुच्छेद 311(2) के खंड (b) एवं (c) में उल्लेखित है] अथवा उस सामग्री को उजागर करना टाला जा सकता है जिस पर कार्रवाई की गई है। ऐसे विभिन्न परिस्थितियां हो सकती हैं जहां किसी के लिये परिकल्पना करना संभव न हो। हमारे सम्मानपूर्वक मत में निर्णित निर्णयों से जो सिद्धांत आते हैं, उन्हें विभागीय आदेशों और जांचों के सन्दर्भ में निम्नानुसार स्वरूप दिया जा सकता है: एक स्पष्ट भेद किया जाना चाहिए — प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत, विशेषकर दोनों पक्षों को सुने जाने के सिद्धांत के पूर्ण उल्लंघन और उसके किसी अंश के उल्लंघन के मध्य। अन्य शब्दों में, "पूर्व सूचना नहीं"/"सुनवाई नहीं" बनाम "पर्याप्त सुनवाई नहीं" अथवा "अवसर नहीं" बनाम "पर्याप्त अवसर नहीं"। **उदाहरणार्थ** – यदि किसी व्यक्ति को उसे सुने बिना सेवा से निष्कासित कर दिया जाए (जैसे *रिज बनाम बाल्दविन* में), तो यह प्रकरण प्रथम श्रेणी का मामला होगा और पदच्युत करने का आदेश *अवैध* या यदि यह शब्द प्रयोग करना चाहें तो *शून्य* होगा (*कैलविन विरूद्ध कार)* । परन्तु जहां किसी व्यक्ति को सेवा से इस प्रकार पदच्युत किया

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

गया हो कि न तो उसे जांच अधिकारी की रिपोर्ट की प्रति प्रदान की गई हो (*प्रबंध निदेशक ईसीआईएल विरूद्ध बी. करुणाकर*), या उसे किसी गवाह के प्रतिपरीक्षण का प्रयाप्त अवसर नहीं दिया गया हो (*के.एल. त्रिपाठी*), तो वह प्रकरण द्वितीय श्रेणी के अंतर्गत आएगा — अर्थात् प्राकृतिक न्याय के उक्त सिद्धांत के किसी एक अंश के उल्लंघन का प्रकरण। ऐसी स्थिति में आदेश की वैधता को पूर्वाग्रह की कसौटी पर परखा जाना आवश्यक होगा, अर्थात् यह परीक्षण किया जाएगा कि संबंधित व्यक्ति को समग्र रूप से निष्पक्ष सुनवाई प्राप्त हुई थी या नहीं। उपरोक्त निर्णयों की पृष्ठभूमि में यह कहना उचित नहीं होगा कि प्राकृतिक न्याय के प्रत्येक अंश के उल्लंघन पर कोई भी आदेश स्वतः ही *अमान्य* हो जाता है और उसे बिना किसी अन्य परीक्षण के निरस्त किया जाना चाहिए। हमारे विचार में, *बी. करुणाकर* में अपनाई गई विधि और परीक्षण उन सभी मामलों पर लागू होना चाहिए, जहाँ शिकायत यह नहीं है कि सुनवाई नहीं हुई (कोई सूचना, कोई अवसर, कोई सुनवाई नहीं), बल्कि यह है कि *उचित सुनवाई* नहीं दी गई (उदाहरण: पर्याप्त या पूर्ण सुनवाई नहीं) अथवा जांच के नियमों या प्रक्रिया का उल्लंघन हुआ। ऐसे सभी मामलों में, शिकायत को उपरोक्तानुसार पूर्वाग्रह की कसौटी पर ही परखा जाना चाहिए।

WebCopy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

"33. हम उपर्युक्त चर्चा से उत्पन्न सिद्धांतों का संक्षेप में उल्लेख करते हैं। (यह स्पष्ट किया जाता है कि ये किसी भी प्रकार से पूर्ण नहीं हैं, बल्कि इन्हें विशेष रूप से अनुशासनात्मक जांचों एवं कर्मचारी पर नियोक्ता द्वारा आरोपित दण्डादेशों की परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए विकसित किया गया है।)"

(1) किसी कर्मचारी पर अनुशासनात्मक/विभागीय जांच के फलस्वरूप पारित दण्डादेश यदि नियमों/विनियमों/वैधानिक उपबंधों के उल्लंघन में हो, जो उक्त जांचों को नियंत्रित करते हैं, तो उसे स्वतः निरस्त नहीं किया जा सकता। न्यायालय अथवा प्राधिकरण को यह परीक्षण करना चाहिए कि— (क) उल्लंघन किया गया प्रावधान मूल प्रवृत्ति का है या (ख) प्रक्रियात्मक प्रवृत्ति का है।

(2) एक मूल प्रावधान के संदर्भ में, जैसा कि पूर्व में स्पष्टीकरण किया गया है, सामान्यतः उसका पालन किया जाना अपेक्षित है, और पर्याप्त पालन अथवा पूर्वाग्रह के परीक्षण का सिद्धांत ऐसे प्रकरणों में लागू नहीं होगा।

(3) प्रक्रियात्मक प्रावधान के उल्लंघन की स्थिति में यह स्थिति उत्पन्न होती है कि ऐसे प्रावधान सामान्यतः दोषी अधिकारी/कर्मचारी को उचित एवं पर्याप्त अवसर प्रदान करने के लिए बनाए गए हैं। ये प्रावधान सामान्यतः उसके हित में होते हैं। प्रत्येक प्रक्रियात्मक प्रावधान का उल्लंघन स्वतः जांच या पारित आदेश को शून्य नहीं कर देता। "कोई सूचना नहीं", "कोई अवसर नहीं" या "कोई सुनवाई नहीं" की श्रेणियों को छोड़कर, प्रक्रियात्मक प्रावधान के उल्लंघन की शिकायत को पूर्वाग्रह के दृष्टिकोण से जांचा जाना चाहिए, अर्थात् क्या उस उल्लंघन ने कर्मचारी को प्रभावी एवं उचित तरीके से अपना बचाव करने में बाधा पहुँचाई। यदि यह पाया जाता है कि कर्मचारी को पर्याप्त रूप से पूर्वाग्रहित किया गया है, तो स्थिति की मरम्मत हेतु उचित आदेश, जैसे कि जांच या दण्डादेश को निरस्त करना, पारित किए जा सकते हैं। यदि कोई पूर्वाग्रह सिद्ध नहीं होता, तो हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं होगी। यह भी स्मरणीय है कि कुछ प्रक्रियात्मक प्रावधान मूलभूत प्रकृति के होते हैं, जिनका उल्लंघन स्वयं में ही पूर्वाग्रह का प्रमाण होता है। ऐसे मामलों में न्यायालय पूर्वाग्रह के पृथक प्रमाण पर बल नहीं देता। जैसा कि निर्णय के मूल भाग में स्पष्ट किया गया है, मान लीजिए कि किसी प्रावधान में यह स्पष्टतः उल्लेखित किया गया है कि जब नियोक्ता/सरकार द्वारा साक्ष्य प्रस्तुत किया जा चुका हो, तो कर्मचारी को अपने बचाव में साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर दिया जाएगा; और किसी विशेष मामले में, जांच अधिकारी द्वारा यह अवसर नहीं दिया जाता, जबकि आरोपित अधिकारी/कर्मचारी ने विशेष रूप से इसकी मांग की हो, तो ऐसे मामले में पूर्वाग्रह स्वयं स्पष्ट होता है। ऐसे मामलों में पूर्वाग्रह के पृथक प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। पुनः यह कि परीक्षण का मानदंड पूर्वाग्रह ही है — अर्थात् यह कि क्या सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए संबंधित व्यक्ति को निष्पक्ष सुनवाई प्राप्त हुई या नहीं। अब, यही पहलू निर्देशात्मक और अनिवार्य प्रावधानों की दृष्टि से भी देखा जा सकता है, यदि कोई ऐसा करने को इच्छुक हो। नीचे दिए गए पैरा (4) में प्रतिपादित सिद्धांत मात्र इसी विषय को भिन्न भाषा में प्रस्तुत करते हैं, न कि कोई पृथक या स्वतंत्र सिद्धांत स्थापित करते हैं।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

(4) **(क)** यदि ऐसा प्रक्रियात्मक प्रावधान जो अनिवार्य प्रकृति का नहीं है, तो उसकी शिकायत को पर्याप्त अनुपालन के दृष्टिकोण से जांचा जाना चाहिए। ऐसे मामलों में जहां आदेश ऐसे प्रावधान के उलंघन में जारी किया गया तो आदेश को केवल तभी

निरस्त किया जा सकता है जब उल्लंघन से कर्मचारी के साथ पूर्वाग्रह कारित हुआ हो।

(ख) यदि ऐसा प्रक्रियात्मक प्रावधान अनिवार्य प्रकृति का है, तो यह निर्धारित करना आवश्यक होगा कि वह प्रावधान कर्मचारी के हित में था या जन हित में। यदि यह कर्मचारी के हित में था तो यह देखा जाना चाहिए कि क्या उस कर्मचारी ने स्पष्ट रूप से या अपने आचरण द्वारा वांछित निर्देशों का त्याग किया है। यदि उसने त्याग कर दिया है, तो दंड का आदेश उस उलंघन के कारण निरस्त नहीं किया जा सकता, परन्तु यदि यह पाया जाता है कि दोषारोपित अधिकारी/कर्मचारी ने उक्त अधिकार को त्याग नहीं किया है या यह कि वह उपबंध उसके द्वारा त्याज्य था ही नहीं, तो न्यायालय अथवा अधिकरण को उपयुक्त निर्देश (जिसमें दण्डादेश को निरस्त करना भी सम्मिलित हो) प्रदान करना चाहिए, इस बात को ध्यान में रखते हुए कि संविधान पीठ द्वारा *बी. करुणाकर* प्रकरण में जो दृष्टिकोण अपनाया गया था, उसका पालन किया जाए। अंतिम परीक्षण सदैव एक ही होता है, अर्थात्, 'पूर्वाग्रह की कसौटी' या जिसे 'निष्पक्ष सुनवाई की कसौटी' भी कहा जाता है।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

(5) जहाँ जाँच किसी भी नियम/विनियम/वैधानिक प्रावधान द्वारा शासित नहीं होती और एकमात्र बाध्यता प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करना होता है — अथवा, जहाँ कहीं भी उक्त सिद्धांतों को आदेश/कार्यवाही की प्रकृति एवं प्रभाव के कारण अंतर्निहित माना जाता है — वहाँ न्यायालय अथवा अधिकरण को प्राकृतिक न्याय (दूसरे पक्ष को भी सुने जाने के सिद्धांत) का पूर्ण उल्लंघन और उक्त सिद्धांत के किसी पक्ष के उल्लंघन के बीच भेद करना चाहिए, जैसा कि निर्णय के मुख्य भाग में स्पष्ट किया गया है। अन्य शब्दों में कहें तो, "कोई अवसर नहीं" और "पर्याप्त अवसर नहीं", अथवा "कोई सूचना नहीं"/"कोई सुनवाई नहीं" और "निष्पक्ष सुनवाई नहीं" — के बीच स्पष्ट अंतर किया जाना चाहिए। (अ) पूर्व श्रेणी के प्रकरणों में पारित आदेश निस्संदेह अवैध होगा (इच्छा हो तो इसे 'अवैध' या 'शून्य' भी कहा जा सकता है)। ऐसे मामलों में सामान्यतः प्राधिकरण को यह स्वतंत्रता दी जाती है कि वह विधि के अनुसार, अर्थात् उपर्युक्त सिद्धांत (दूसरे पक्ष को भी सुने जाने) के अनुरूप, पुनः कार्यवाही प्रारंभ करे। (b) परन्तु बाद की श्रेणी

में, अर्थात् दूसरे पक्ष को भी सुने जाने के सिद्धांत के किसी पक्ष के उल्लंघन की स्थिति में, उस उल्लंघन के प्रभाव की जांच 'पूर्वाग्रह के दृष्टिकोण' से की जानी चाहिए; अन्य शब्दों में, न्यायालय अथवा अधिकरण को यह देखना होता है कि समग्र परिस्थितियों में, क्या दोषारोपित अधिकारी/कर्मचारी को निष्पक्ष सुनवाई प्राप्त हुई थी या नहीं — और पारित किए जाने वाले आदेश उक्त प्रश्न के उत्तर पर निर्भर करेगा। [यह स्पष्ट किया जाता है कि यह सिद्धांत (संख्या 5) पूर्वग्रह के विरुद्ध नियम के प्रकरणों में लागू नहीं होता, जिसके संबंध में परीक्षण के सिद्धांत पृथक रूप से स्थापित हैं।]"

(6) जब न्यायालय/प्राधिकरण/अधिकरण द्वारा *दूसरे पक्ष को भी सुनने का सिद्धांत* (प्राकृतिक न्याय का मूलभूत सिद्धांत) लागू किया जाता है, तो उन्हें सदैव इस सिद्धांत के अन्तर्निहित अंतिम एवं प्रधान उद्देश्य को ध्यान में रखना चाहिए, अर्थात् — निष्पक्ष सुनवाई सुनिश्चित करना एवं यह सुनिश्चित करना कि न्याय निष्फल न हो। विभिन्न परिस्थितियों में इस सिद्धांत को लागू करते समय यही उद्देश्य उनका मार्गदर्शन करना चाहिए।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

(7) ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो सकती हैं जहाँ राज्यहित या जनहित की आवश्यकताएँ दूसरे पक्ष को भी सुनने के सिद्धांत में आंशिक कटौती की मांग कर सकती हैं। ऐसे मामलों में, न्यायालय को जनहित/राज्यहित तथा प्राकृतिक न्याय की आवश्यकता के मध्य संतुलन स्थापित करते हुए उपयुक्त निर्णय तक पहुँचना होता है।

20. स्टेट बैंक ऑफ पटियाला (पूर्वोक्त) वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित न्याय सिद्धांत को समस्त पश्चातवर्ती निर्णयों में विश्लेषण एवं स्वीकार किया गया है। (2006) 5 एससीसी 88 में प्रकाशित न्यायदृष्टांत ***एम. वी. बिजलानी विरुद्ध भारत संघ एवं अन्य***[2] में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि:

"25. यह सत्य है कि न्यायिक पुनर्विलोकन में न्यायालय का अधिकार-क्षेत्र सीमित होता है। तथापि, अनुशासनात्मक कार्यवाही अर्द्ध-दण्डात्मक प्रकृति की होने के कारण, आरोप को प्रमाणित करने के लिए कुछ ठोस साक्ष्य होना आवश्यक है।

[2] (2006) 5 एसीसी 88

यद्यपि विभागीय कार्यवाही में आरोपों को आपराधिक अभियोजन की भाँति — अर्थात् 'संदेह से परे' प्रमाणित करना आवश्यक नहीं होता, तथापि यह तथ्य दृष्टि से ओझल नहीं किया जा सकता कि जांच अधिकारी एक अर्द्ध-न्यायिक कर्तव्य का निर्वहन करता है, जिसे अभिलेखों का विश्लेषण कर यह निष्कर्ष निकालना होता है कि उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर आरोपों की पुष्टि 'संतुलन की प्रबलता' के सिद्धांत पर की जा सकती है। इस कार्य को करते समय वह किसी भी असंगत तथ्य पर विचार नहीं कर सकता। वह सुसंगत तथ्यों की उपेक्षा नहीं कर सकता। वह साबित करने के भार को स्थानांतरित नहीं कर सकता। वह केवल अनुमानों और कल्पनाओं के आधार पर गवाहों के सुसंगत साक्ष्य को अस्वीकार नहीं कर सकता। वह उन आरोपों की जांच नहीं कर सकता जिनके संबंध में अपचारी अधिकारी पर कोई आरोप पत्र ही प्रस्तुत नहीं किया गया है।"

21. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा (2007) 1 एससीसी 437 में प्रकाशित न्यायदृष्टांत ***मथुरा प्रसाद विरुद्ध भारत संघ एवं अन्य*** [3] में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि:

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

"19. जब किसी कर्मचारी को, अनुशासनहीनता के किसी आरोपित कृत्य के कारण, उसकी आजीविका से वंचित करने का प्रयास किया जाता है, तब उप प्रावधानों में निर्धारित प्रक्रियाओं का कड़ाई से पालन किया जाना आवश्यक होता है। यह अब सुव्यवस्थित विधिक सिद्धांत है कि यदि अभिलेख पर विधि की त्रुटि स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हो, तब भी न्यायिक पुनर्विलोकन स्वीकार्य होगा। यदि कोई वैधानिक प्राधिकरण अपनी शक्ति का उपयोग विधिक प्रावधान में विहित रूप से न करते हुए अथवा बिना युक्तियुक्त विश्लेषण के आदेश पारित करता है, तो उस स्थिति में न्यायिक पुनर्विलोकन न्यायोचित होगा। यहाँ तक कि यदि तथ्यात्मक त्रुटि भी पर्याप्त कारणों के साथ पाई जाए, तो वह भी न्यायिक पुनर्विलोकन के सिद्धांतों को आकर्षित कर सकती है।"

22. उपर्युक्त समस्त तथ्यों पर विचार करते हुए यह भली-भांति स्थापित होता है कि याचिकाकर्ता के साथ पक्षपात हुआ है और पूर्वाग्रह की परीक्षा को लागू करते हुए यह स्पष्ट है कि जांच प्रतिवेदन दोषपूर्ण था। अतः दोषपूर्ण जांच प्रतिवेदन के आधार पर पारित

[3] (2007) 1 एसीसी 437

आदेश दिनांक 24.10.1995 (अनुलग्नक ए/2) तथा अपीलीय आदेश दिनांक 25.10.1997 (अनुलग्नक ए/1) विधि की दृष्टि से मान्य नहीं हैं।

23. प्रकरण के तथ्यों पर विधि के सुस्थापित सिद्धांतों को लागू करते हुए यह प्रतिपादित किया जाता है कि जांच प्रक्रिया दोषपूर्ण थी, क्योंकि याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर प्रदान नहीं किया गया तथा संबंधित साक्षीगण के कथनों को अभिलिखित न करने और साक्षीगण से प्रतिपरीक्षण करने का अवस न देने से याचिकाकर्ता के प्रति पूर्वाग्रह उत्पन्न हुआ है। अतः, आयुक्त द्वारा पारित आदेश दिनांक 24.10.1995 (अनुलग्नक ए/2) तथा राज्य शासन द्वारा पारित आदेश दिनांक 25.10.1997 (अनुलग्नक ए/1) को खारिज किया जाता है। यह निर्देशित किया जाता है कि याचिकाकर्ता को सेवा में पुर्नस्थापित किया जाए तथा उसे सभी पारिणामिक लाभ, जिसमें दिनांक 24.10.1995 एवं 25.10.1997 के दोषपूर्ण आदेशों को निरस्त किए जाने के फलस्वरूप प्राप्त होने वाला पिछला वेतन भी सम्मिलित हो, प्रदान किया जाए। तथापि, प्रतिवादीगण को यह स्वतंत्रता है कि यदि वे विधि के अनुसार कोई कार्रवाई करना चाहें, तो ***स्टेट बैंक ऑफ इंडिया*** *(उपर्युक्त)* में प्रतिपादित विधिक सिद्धांतों के आलोक में उचित विधिक प्रक्रिया अपनाकर ऐसा कर सकते हैं।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

24. याचिका स्वीकार की जाती है। प्रकरण के तथ्य एवं परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए, पक्षकारगण अपने-अपने व्यय वहन करेंगे।

सही/-

सतीश के. अग्नीहोत्री

न्यायाधीश

अस्वीकरणः हिन्दी भाषा में निर्णय का अनुवाद पक्षकारों के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा । समस्त कार्यालयीन एवं व्यवहारिक प्रयोजनों हेतु **निर्णय का अंग्रेजी स्वरुप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।**

Translated By – श्रीमती रेशमा कुजूर, अनुवादक